इकाई–13 समाधि

13.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति बनाने वाली प्रणाली 'योग विद्या' है जिसके आधार पर ही प्राचीन ऋषियों मुनियों ने प्रकृति एवं प्रकृति से परे सूक्ष्म तत्वों का रहस्यात्मक ज्ञान प्राप्त किया था। इस योग विद्या का आधार आत्मशोधन एवं जीवन परिष्कार साधना है जिसे अपनाकर आज भी जड़ एवं चेतन के सूक्ष्म रहस्यों के ज्ञान की प्राप्ति व आत्मिक उत्कर्ष सम्भव है।

जड़ शास्त्र विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ वाह्य प्रयोगशाला में शोध कार्य होते हैं वही चेतना का शास्त्र अघ्यात्म के क्षेत्र में अन्तःकरण को ही प्रयोगशाला बनाकर सत्यान्वेषण किया जाता है। और यह आध्यात्मिक शोध प्रक्रिया योग साधना कहलाती है जिसमें साधक समाधि के चरण में पहुँचकर जीवन व जगत के सूक्ष्म रहस्यों अलौकिक सत्यों एवं स्वयं के वास्तविक स्वरूप से परिचित होता है और जीवन के अंतिम लक्ष्य परमपुरुषार्थ 'कैवल्य' को प्राप्त करता है।

भारतीय अध्यात्म की यह विषेषता है कि यहाँ सत्य को पाने के अनेकों मार्ग बताये गये है (साधनानाम् अनेकता हिन्दू धर्मस्य लक्षणम्।) इसलिए भिन्न–भिन्न योग शास्त्रों में समाधि की अवस्था तक पहुँचने के भिन्न–भिन्न साधना मार्ग बताये गये हैं और उनमें समाधि का स्वरूप भी अलग अलग है। प्रस्तुत इकाई में समाधि के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या के साथ साथ महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में समाधि की अवधारणा उसके भेद एवं प्राप्ति के साधनों की विस्तृत विवेचना की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भिन्न–भिन्न दृष्टि कोणों से समाधि का अर्थ, समाधि के विभिन्न चरण, समाधि योग साधनो के अन्तर्गत मानव चेतना के उत्कर्ष की भूमियाँ– सप्तधा प्रज्ञा, समाधि के विभिन्न साधन (यौगिक उपाय) तथा पतंजलि प्रणीत अभ्यास, वैराग्य, क्रियायोग एवं अष्टांग योग आदि साधनाओं को तथा उनके व्यावहारिक महत्त्व को ठीक ढंग से समझ सकेंगे जो आपके स्वयं एवं सामाजिक उत्कर्ष में सहायक सिद्ध होगा।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप यह बता सकेंगे कि–

- ☞ समाधि क्या है?
- ☞ भिन्न भिन्न यौगिक ग्रन्थों में समाधि का स्वरूप क्या है।
- ☞ ध्यान और समाधि में मूलभूत अन्तर क्या है? पतंजलि योग दर्शन में समाधि की विवेचना किस तरह की गई है।
- ☞ समाधि की उच्च अवस्था की तरफ उन्मुख चेतना की क्या भूमियाँ होती है?
- ☞ समाधि सिद्धि के यौगिक उपाय कौन कौन से है?
- ☞ महर्षि पतंजलि ने अभ्यास एवं वैराग्य, क्रिया योग तथा अष्टांग योग इत्यादि साधनाओं का विवेचन किस रूप में तथा किन अधिकारी साधकों के लिए की है।
- ☞ पुनश्च, इन यौगिक साधनाओं का व्यावहारिक स्वरूप तथा सामाजिक महत्त्व क्या है? आप इन सबसे ठीक ढंग से अवगत् हो सकेंगे।

13.3 समाधि

समाधि शब्द सम और आ उपसर्गपूर्वक धा धातु से कित् प्रत्यय करने पर बना है जिस का अर्थ होता है एकाग्रता, एकाग्र करना, ध्यान की पराकाष्ठा, योग की अंतिम स्थिति, आत्म साक्षात्कार की स्थिति, जीवात्मा परमात्मा के मिलन की अवस्था आदि। समाधि का अर्थ है ध्येय वस्तु में चित्त की विक्षेप रहित एकाग्रता। योग दर्शन के अनुसार– 'समाधीयते चित्तमन्नेनोति समाधिः'। अर्थात् समस्त वृत्तियों के निरोध होने पर चित्त की स्थिर और उत्कृष्ट अवस्था का नाम समाधि है। भोज राज के अनुसार– जिसमें मन विक्षेपों से हटाकर एकाग्र किया जाता है वह समाधि है (राजमार्तण्डवृत्ति) ''सम्यग आधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनोयत्र स समाधिः'। समाधि की परिभाषा करते हुए विद्यारण्य स्वामी ने लिखा है कि निर्वात स्थान में रखे दीपक की लौ के समान चंचलता से रहित चित्त की निश्चल अवस्था का नाम ही समाधि है।

13.3.1 ध्यान और समाधिः–

ध्यान की परिपक्व अवस्था का नाम ही समाधि है। ध्यान का अभ्यास दीर्घ काल तक करते रहने पर जब उसमें परिपूर्णता आ जाती है तब वही ध्यान समाधि के रूप में परिणत हो जाता है। अतः ध्यान के बाद समाधि की अवस्था आती है। वस्तुतः समाधि ध्यान की ही अगली एवं पूर्ण अवस्था है।

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र ग्रन्थ में समाधि का लक्षण बताते हुए कहा है कि–

तदेव अर्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।। (योग सूत्र 3/3)

अर्थात् ध्यान करते करते जब चित्त ध्येयाकार के रूप में परिणत हो जाता है और अपने स्वरूप का भान शून्य (अभाव, लुप्त) सा हो जाय तथा उस समय ध्येय से भिन्न कोई भी वस्तु प्रतीत न हो तो (ध्यान की) वही अवस्था समाधि कहलाती है।

ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि ध्यान की अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों अलग–अलग होते है। ध्याता को ध्येय का ध्यान रहता है जबकि समाधि की अवस्था में ध्यान ही ध्येय बन जाता है। ध्यान और ध्येय के मध्य का भेद मिट जाता है और ध्याता 'मैं' की सत्ता भूलकर ध्येय से एकाकार हो जाता है। इस प्रकार समाधि में ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी में ध्येय ही शेष रह जाता है। तथा ध्याता एवं ध्यान ध्येयाकार हो जाते हैं। एक प्रकार से समाधि आत्म विस्मृति की अवस्था है। इस अवस्था में समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है जो योग का लक्ष्य भी है– **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (योग सूत्र 1/2)

योगभाष्यकार व्यास का भी कथन है–

ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण

शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेषा तदा समाधिरित्युच्यते। (व्यास भाष्य **3/3)**

अर्थात् जिस काल में ध्यान केवल ध्येयकार होकर निरन्तर शसित होता है एवं ध्येय का स्वरूप हो जाने से चित्तवृत्त्यात्मक ध्यान स्वरूप शून्य के समान हो जाता है, उस समय वही ध्यान समाधि के नाम से कहा जाता है।

13.3.2 समाधि की अन्य परिभाषाएं–

प्रायः योग साधना की सभी प्रणालियों में समाधि की चर्चा किसी न किसी रूप में की गई है। मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण आदि जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के क्रम में समाधि की स्थिति का वर्णन भिन्न–भिन्न रूपों में विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। जैसे–

विष्णु पुराण में कहा गया है कि–

तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्।

मनसा ध्यानं निष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते।। (विष्णु पुराण 6/7/92)

अर्थात्– ध्यान के कल्पनाहीन स्वरूप को ग्रहण करना तथा मन के द्वारा ध्यान की चरम अवस्था को प्राप्त होना ही समाधि है।

स्वामी नारायण तीर्थ के अनुसार– स्वच्छ चित्त का वृत्ति प्रवाह रूप ध्यान ही जब ध्यान के ज्ञान से शून्य होकर ध्येय विषय का पूर्ण रूप से असंदिग्ध भान कराने लगे तथा जब वास्तविक पदार्थ मैं इस प्रकार का चिन्तन कर रहा हूँ' इस प्रकार के आकार से रहित (शून्य) हो जाय तो उस प्रकार के ध्यान को ही भावना विशेष रूप समाधि कहा जाता है–

''तदेव स्वच्छ चित्तस्यवृत्ति प्रवाहरूपं ध्यानमेव अर्थ मात्र निर्भासम्। अर्थमात्रस्य प्रत्ययादि वर्जितस्य ध्येयस्य निःशेषणा संदिग्ध सर्वात्मना शासो भानं यत्र तथा भूतमहमिदं चिन्तयामीत्येव विधाकार शून्यम। तादृष ध्यानं भावना विशेषः समाधिः पदार्थः। (योग सिद्धान्त चन्द्रिका)

विद्यारण्य स्वामी के अनुसार–

निर्वात द्वीप वच्चित्तं समाधिः अभिधियते।

अर्थात्– निर्वात स्थान पर स्थित दीपक के समान चंचलता से रहित चित्त की निश्चल अवस्था का नाम ही समाधि है।

समाधि के विषय में महर्षि दयानन्द का कहना है कि जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है, उसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होकर अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के आत्मा के परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका)

अपरोक्षानुभूति में कहा गया है कि–

निर्विकारतया वृत्या ब्रह्माकार तथा पुनः।

वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञान संज्ञकः।। (अपरोक्षानुभूति 124)

अर्थात्– निर्विकार तथा ब्रह्मकार वृत्ति से जो पूर्णतया वृत्तिहीनता हो जाती है वही ज्ञान समाधि है।

योग याज्ञवल्क्य में जीवात्मा और परमात्मा की समान या समता अवस्था को समाधि कहा गया है–

स्माधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः। (योग याज्ञवल्क्य 10/2)

समाधि के विषय में भक्तिसागर का वर्णन इस प्रकार है–

जबहिं लगै समाधि योगी आनन्द लहै।

योग भया सिध जान क्रिया कोइ ना रहै।।

मिलि ध्याता अरू ध्यान एक होवै जहाँ।

दूजा रहै न भाव मुक्ति वर्तै जहाँ।।

निर उपाधि निरवेद ऐसा वह देष है।

करम भरम अरू धरम नहीं कोई लेष है।।

आपा रहै न कोय सकल आस गरै।

चिन्ता या दुख नहीं वासना सब जरै।।

पंच विषय जहं नाहि, नहीं गुण तीन ही।

हौवैं ब्रहम स्वरूप जीवता क्षीन ही।।

जाग्रत स्वप्न सुसुप्ति जहाँ होवैं न हीं।

चौथे पद को पाय होय जहं लीन हीं।।

समाधि की अवस्था में जीव का जीव भाव समाप्त हो जाता है और ब्रह्म भाव व्यक्त होने लगता है। वास्तव में जीव तो ब्रह्म ही है किन्तु अविद्या आदि विकारों के कारण स्वयं को भूल गया। अब समाधि के सिद्ध होने पर क्या होता है, इस सम्बन्ध में भक्ति सागर का कथन है कि समाधि प्राप्त होने पर सभी विकार मिट गये, दोष–दुर्गुण नष्ट हो गये जीव निर्मल होकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लिया–

हुता आदि परमात्मा बिच उठि लगा विकार।

मिलि समाधि निर्मल भवै, लहै रूप ततसार।। (भक्ति सागर, अष्टांग योग)

उपनिषदों में समाधि को आत्मा परमात्मा के मिलन की अवस्था कहा गया है। यथा–

जाबालदर्शनोपनिषद के अनुसार– जीवात्मा और परमात्मा के ज्ञान के उदय को समाधि कहते हैं।

(जाबाल॰ 10/1)

अन्नपूर्णोपनिषद (5/75) भी उपर्युक्त कथन से सहमत है उसके अनुसार समाधि संशय एवं आसक्ति से रहित आत्मपूर्णता की अवस्था है।

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद कहता है कि– जीवात्मा की परमात्मा के साथ एकता ही समाधि है जिसमें संकल्प–विकल्प की सारी क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं। (सौभाग्य लक्षयुपनिषद–16)

मुक्तिकोपनिषद में समाधि संकल्प शून्य आत्म ज्ञान की अवस्था है। उसके अनुसार– ''यह समाधि उस संकल्प शून्य अवस्था का नाम है जिसमें न मन की क्रिया है और न ही बुद्धि

का व्यापार। यह आत्मज्ञान की अवस्था है और इसमें उस प्रत्यक् चैतन्य (आत्म चेतना) के अतिरिक्त सबका बाध (अभाव) है।'' (मुक्तिकोपनिषद 2/55)

शाण्डिल्योपनिषद का मत है कि जीवात्मा और परमात्मा की एकता की वह अवस्था जिसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी का अभाव है, जो परमानन्द रूपा है और शुद्ध चैतन्यात्मिका है, वही समाधि है। (शाण्डिल्योपनिषद 1/11)

तेजोबिन्दूपनिषद के अनुसार– ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा अथवा सर्वसंकल्प निवृत्ति के द्वारा चित्त की वृत्तियों को सर्वथा भूल जाने का नाम ही 'समाधि' है। (तेजोबिन्दूपनिषद 1/37)

हठयोग प्रदीपिका में समाधि की स्थिति को भिन्न भिन्न तरीके से समझाते हुए इसे आत्मा और परमात्मा की एकरूपता बताया गया है। ग्रन्थ में कहा गया है कि जैसे नमक पानी में मिलकर एकरूप हो जाता है वैसे ही जब प्राण और मन दोनों एक रूपता या समरसता प्राप्त कर लेते हैं उस स्थिति को 'समाधि' कहते हैं–

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः।

तथात्म मनसोरैक्यं समाधिः अभिधीयते।।

पुनः जब प्राण क्षीण व मन्द होकर चित्त में लीन हो जाय तो दोनों की एक रूपता भी समाधि है–

यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते।

तदा समरसत्वं च समाधिः अभिधीयते।।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों के एकत्व से सभी प्रकार के संकल्पों का नष्ट हो जाना भी समाधि कहलाता है–

तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनोः।

प्रनष्ट सर्वसंकल्पः समाधिः सोऽमिधीयते।। (हठयोग प्रदीपिका 4/5–7)

महर्षि घेरण्ड के अनुसार शरीर से मन को भिन्न करके परमात्मा में लगाने पर समाधि होता है समाधि में अपने नित्य मुक्त शोक–दुख रहित सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म रूप का बोध हो जाता है। इसके लिए विद्या, गुरु और आत्मा की प्रतीति के साथ मन का प्रबोध आवश्यक है–

विद्या प्रतीतिः स्वगुरु प्रतीतिः आत्म प्रतीतिः मनसः प्रबोधः।

दिने दिने यस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः।।

घटाद् भिन्न मनः कृत्वा चैक्यं कुर्यात्परात्मनि।

समाधिं तं विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः।।

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रहमैवाहं न शोक भाक्।

सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्।। (घे॰ स॰ 7/2–4)

ब्रह्मसूत्र भाष्यकार श्री शंकराचार्य के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है। दोनों अद्वैत हैं। इस आत्म स्वरूप का बोध समाधि में होता है। विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य जी कहते हैं

समाधिनानेन समस्तवासना

ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाशः।

अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा

स्वरूप विस्फूर्तिरयत्नतः स्यम्।। (विवेक चूड़ामणि 364)

अर्थात् समाधि से समस्त वासना रूप ग्रन्थि का विनाश और अखिल कर्मो का नाश होकर भीतर बाहर सर्वत्र एवं सर्वदा बिना यत्न किये ही स्वरूप की विस्फूर्ति होने लगती है।

13.3.3 योग और समाधि–

समाधि योग का महत्त्वपूर्ण प्रत्यय है। समाधि की अवस्था में ही योग का उद्देश्य पूर्ण होता है। प्रायः समाधि को योग का पर्याय माना जाता है। व्यास भाष्य में भी कहा गया है कि–

समाधि ही योग है– **योगः समाधिः। (योग भाष्य 1/1)**

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में भी समाधि ही योग की अंतिम सीढ़ी है। समाधि (आत्मा) से पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति होती है जिससे पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। इस प्रकार समाधि परमपुरुषार्थ की पूर्व अवस्था है। इसकी सिद्धि के उपरान्त ही पुरुष को तत्वज्ञान प्राप्त होता है जिससे अविद्या आदि की निवृत्ति होकर कैवल्य होता है।

समाधि की अवस्था में पुरुष (आत्मा) का सम्बन्ध वाह्य जगत के साथ टूट जाता है और वह पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह परम शांति की अवस्था है। यह कोई सरल अनुभव नहीं है अपितु यह एक रहस्यमय अवस्था है जिसका अनुभव इस अवस्था में गये बिना नहीं हो सकता।

13.4 योग दर्शन में समाधि के भेद

योग दर्शन में समाधि के मुख्य दो प्रकार बताये गये हैं और फिर दोनों भेदों के भी कुछ उपभेद किये गये हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार है–

योग दर्शन में समाधि मूलतः दो प्रकार की ही है– सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि एवं असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

13.4.1 सम्प्रज्ञात समाधिः– यह ध्यान से समाधि तक पहुँचने की पहली अवस्था है। सम्प्रज्ञात समाधि में केवल ध्येय विषय का ही ज्ञान होता है तथा ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का अभाव हो जाता है। ध्यान करने वाले (ध्याता) को केवल ध्यान के विषय (ध्येय) का ज्ञान रहता है, उसे अपनी पृथक अनुभूति नहीं होती। इससे पूर्व ध्यान की अवस्था में उसे यह अनुभव होता था कि मैं अमुक व्यक्ति (ध्याता) अमुक विषय (ध्येय) का ध्यान कर रहा हूँ किन्तु ध्यान की इस अवस्था से और ऊँची स्थिति में पहुँचने पर ध्याता और ध्यान दोनों ध्येयाकार हो जाते है इनकी ध्येय से पृथक अनुभूति नहीं होती। यह

अवस्था ही सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था होती है। चूँकी इसमें आलम्बन रूप में कोई न कोई ध्येय विषय होता है इसलिए इसे सबीज समाधि भी कहते हैं।

एकाग्रावस्था में रजोगुण और तमोगुण युक्त चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय सत्व गुण प्रधान एकाग्र वृत्ति होने के कारण चित्त शुद्ध और निर्मल हो जाता और तब चित्त ध्येय विषय पर ध्यान केन्द्रित करने में समर्थ हो जाता है।

इस विक्षेप रहित शान्त अवस्था में प्रज्ञा का उदय होता है सम्यक् रूप से प्रज्ञा का आविर्भाव होने के कारण इसे सम्प्रज्ञात समाधि कहा गया है। इसे सम्प्रज्ञात इसलिए भी कहते हैं क्योंकि इसमें ध्येय विषय सम्पक रूप से ज्ञात रहता है।

महर्षि पंतजलि के शब्दों में–

क्षीण वृत्तेः अभिजातस्य इव मणेः ग्रहण ग्राह्येषु तत् स्थतंजनता समापत्तिः। (योग सूत्र 1/41)

अर्थात् ध्यान आदि साधनाओं का अभ्यास करते–करते जब साधक का चित्त स्वच्छ स्फटिक मणि की भाँति अति निर्मल हो जाता है तथा जब उसकी ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य वाह्य वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं उस समय साधक ग्रहीता (पुरुष) ग्रहण (अन्तःकरण और इन्द्रियाँ) तथा ग्राहय (पंचभूत आदि इन्द्रिय विषय), इनमें जिस किसी पर भी ध्येय का लक्ष्य बनाकर उसमें अपने चित्त को लगाता है तो वह चित्त उस ध्येय वस्तु में स्थित होकर तदाकार हो जाती है– (तदस्थतदंजनता)। इसी को सम्प्रज्ञात समाधि (समपत्ति) कहते हैं समाधि की इस अवस्था में साधक को ध्येय वस्तु के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है उसके विषय में किसी प्रकार का संशय या भ्रम नहीं रहता।

सम्प्रज्ञात समाधि के प्रकारः–

सम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म की ओर होता है। स्थूल पदार्थों के साक्षात्कार एवं उनके स्वरूप को जानने के बाद क्रमष विषयों के साक्षात्कार करने, उनके स्वरूप को जानने में समर्थ होता जाता है। इन्ही स्थूल सूक्ष्म आदि ध्येय विषयों की भिन्नता के आधार पर सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की बताई गई है–

''वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः'' (योग सूत्र 1/17)

अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि चार तरह की है–

1 वितर्कानुगत् या सवितर्क समाधि

2 विचारानुगत् या सविचार समाधि

3 आनन्दानुगत् या सानन्द समाधि

4 अस्मितानुगत् या सास्मित समाधि

1. वितर्कानुगत समाधिः– यह समाधि का वह रूप है जिसमें ध्यान का आलम्बन या विचार अर्थात् ध्येय विषय स्थूल पदार्थ होते हैं, जैसे सूर्य, मूर्ति, आदि।

व्यास भाष्य के अनुसार–

वितर्कः चित्तस्याऽऽलम्बने स्थूल आ भोगः।

इस समाधि में योगी विश्व ब्रहमाण्ड के स्थूल पदार्थों–सौरमण्डल, तारामण्डल, ग्रह, उपग्रह आदि दूरस्थ पिण्डों के स्वरूप को जानने में समर्थ हो जाता है। शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प की दृष्टि से इस समाधि के दो प्रकार हैं–

1. सवितर्क समाधि और 2. निर्वितर्क समाधि।

वितर्कानुगत समाधि में जब तक शब्द अर्थ और ज्ञान का विकल्प वर्तमान रहता है अर्थात योगी के चित्त में ध्येय स्थूल विषय के स्वरूप के साथ–साथ उसके नाम और प्रतीति की भी अनुभव रहता है, तब तक वह सवितर्क समाधि कहलाती है–

तत्र शब्दार्थ ज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः। (योग सूत्र 1/42)

और जब इनका विकल्प नहीं रहता तो समाधि की वह अवस्था निर्वितर्क समाधि कहलाती है–

स्मृतिपरिषुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का। (योग सूत्र 1/43)

सवितर्क समाधि को सविकल्पक समाधि तथा निर्वितर्क समाधि को निर्विकल्पक समाधि भी कहते है क्योंकि इसमें सभी प्रकार के विकल्पों का अभाव हो जाता है।

2. विचारानुगत समाधिः– इसमें ध्यान का आधार सूक्ष्म विषय जैसे तन्मात्रा आदि होते हैं। यह भी सविचार और निर्विचार दो प्रकार की होती है। जब तक इस समाधि में शब्द अर्थ और ज्ञान का विकल्प रहता है तब तक वह सविचार समाधि तथा जब इनका विकल्प नहीं रहता, तब वही निर्विचार समाधि कही जाती है–

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता। (योग सूत्र 1/44)

3. आनन्दानुगत या सानन्द समाधिः– यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें ध्यान का विषय इन्द्रियाँ होती है। इस समाधि में अति सूक्ष्म विषयों पर केन्द्रित चित्त में सत्त्व गुण की अधिकता के कारण विशेष आनन्द की अनुभूति होती है इसीलिए इसे आनन्दानुगत समाधि या सानन्द समाधि कहते हैं।

4. अस्मितानुगत समाधि या सास्मित समाधिः– समाधि की इस अवस्था में ध्यान का विषय अस्मिता होती है। इसमें साधक (योगी) को केवल 'मैं हूँ' का ज्ञान रहता है।

उपर्युक्त चारों समाधियों को (अर्थात सम्प्रज्ञात समाधि को) पतंजलि ने सबीज समाधि कहा है।

" ता एव सबीजः समाधिः।" (योग सूत्र 1/46)

निर्वितर्क और निर्विचार समाधियाँ निर्विकल्प होने पर भी निर्बीज नही हैं, ये सभी सबीज समाधि ही है क्योंकि इनमें बीज रूप से किसी न किसी ध्येय पदार्थ का अस्तित्व ध्येय वृत्ति के रूप में रहता है। इन समाधियों में चित्त में ध्येय वृत्ति मौजूद रहती है इसलिए चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध अभी नहीं हुआ होता है। जिस कारण सम्प्रज्ञात समाधि या सबीज समाधि से पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति अभी नहीं हो पाती। योगी साधक का चित्त

जैसे–जैसे निर्मल होता जाता है चित्त के अन्दर की वृत्तियाँ क्षीण होती जाती हैं, वैसे–वैसे वह समाधि की ओर अधिक उच्च अवस्था प्रवेश करता जाता है।

13.4.2 असम्प्रज्ञात समाधि या निर्बीज समाधिः–

यह समाधि की सर्वोच्च अवस्था है। इसमें चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं इसीलिए इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त में कोई भी आलम्बन (ध्यान का विषय) नहीं होता। इसमें परम वैराग्य की स्थिति होती है। योगी को संसार की किसी भी वस्तु में माया ममता नहीं रहती। इस की पूर्व अवस्था में केवल शुद्ध संस्कार ही शेष बचे रहते हैं–

. **.............संस्कारषेषो अन्यः। (योग सूत्र 1.18)**

और इन संस्कारों के भी निरोध हो जाने पर संस्कार के बीज का सर्वथा अभाव हो जाने से निर्बीज समाधि हो जाती है–

तस्यापि निरोधे सर्व निरोधात् निर्बीजः समाधि। (योग सूत्र 1/51)

जिस प्रकार अग्नि ईधन को जलाकर स्वयं भी शान्त हो जाती है, उसी प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि में ऋतम्भरा प्रज्ञा उदय होकर अविद्या, वृत्ति एवं संस्कार को भस्म करके स्वयं भी उपशान्त हो जाती है। उस समय विशुद्ध चैतन्य मात्र रहता है जो द्रष्टा पुरुष का स्वरूप है यही पुरुष का कैवल्य या मोक्ष है जो योग का उद्देश्य था।

असम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकार की होती है–

1. भवप्रत्यय और 2. उपाय प्रत्यय।

यदि कोई योगी योग साधना कर रहा होता है और विदेहलय–प्रकृतिलय अवस्था में पहुँच ने के बाद भी कैवल्य पद की प्राप्ति से पूर्व ही जिसकी मृत्यु हो जाती है, ऐसे योगियों का जब पुनर्जन्म होता है तो पूर्वजन्म के योगाभ्यास विषयक संस्कारो के प्रभाव से वे अन्य साधन (उपाय) अपनाये बिना ही निर्बीज समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। उनकी निर्बीज समाधि उपाय जन्य नहीं होती अतः उसका नाम 'भव प्रत्यय' है अर्थात वह ऐसी समाधि है जिसके सिद्ध होने में पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त होना ही कारण है साधन समुदाय नहीं–

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्। (योग सूत्र 1/19)

किन्तु दूसरे सामान्य योगियों को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, ऋतम्भरा, प्रज्ञा आदि उपायों के द्वारा यह समाधि सिद्ध होती है। यही उपाय प्रत्यय है।

श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। (योग सूत्र 1/20)

13.4.3 सबीज एवं निर्बीज समाधि में अन्तरः–

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि असम्प्रज्ञात समाधि ही योग का लक्ष्य है और सम्प्रज्ञात समाधि इस लक्ष्य तक पहुँचने की सीढ़ी है। सम्प्रज्ञात समाधि सबीज समाधि है किन्तु असम्प्रज्ञात निर्बीज समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का कोई न कोई आधार होता है तथा बुद्धि का व्यापार बना रहता है, इसमें चित्त विक्षेप पैदा करने वाले कारण दूर हो

जाते है और बुद्धि सत्त्व गुण प्रधान होकर प्रकाशित होती है इसके विपरीत असम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान के विषय की चेतना भी लुप्त हो जाती है। असम्प्रज्ञात का अर्थ ही है चेतना से भी ऊपर की अवस्था। इस अवस्था में केवल रजस् एवं तमस् से उत्पन्न होने वाली निकृष्ट वृत्तियाँ ही निरूद्ध नहीं होतीं बल्कि सत्व की प्रधानता से उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ वृत्तियाँ भी निरूद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है जबकि सम्प्रज्ञात समाधि में सत्त्व प्रधान वृत्तियाँ शेष रह गई होती हैं। इसमें ध्येय आलम्बन वृत्ति भी मौजूद होती है इसीलिए इसे सबीज समाधि कहा गया है जबकि असम्प्रज्ञात को निर्बीज समाधि।

सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त की निर्मलता से ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है जिससे विवेक ख्याति द्वारा अविद्या आदि क्लेश का नाश होता है और योगी धर्ममेध समाधि से होते हुए निर्बीज समाधि को प्राप्त करता है जो कैवल्य की अवस्था है, जीवन का परम पुरुषार्थ और योग का अंतिम लक्ष्य है।

13.4.4 ऋतम्भरा प्रज्ञा, विवेक ख्याति एवं धर्ममेध समाधिः–

सम्प्रज्ञात समाधि की उच्च अवस्था में निर्विचार समाधि के अभ्यास से जब योगी का चित्त शुद्ध और निर्मल हाने लगता है तो उसकी बुद्धि भी अत्यन्त शुद्ध और निर्मल हो जाती है। उस अवस्था में योगी की बुद्धि सत्य स्वरूप को ग्रहण करने वाली होती है उसकी बुद्धि में संशय और भ्रम का लेश मात्र भी नहीं होता। योगी के ऐसे शुद्ध बुद्धि को ही पतंजलि ने ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा है।

ऋतम्भरा प्रज्ञा, तत्र प्रज्ञा (योग सूत्र 1/48)

बुद्धि के संस्कार राग द्वेष युक्त होने से बंधन के कारण होते हैं जब बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा की स्थिति में पहुँच जाती है तो उससे उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य दूसरे संस्कारों का भी नाश करने वाला होता है–

तज्जः संस्कारः अन्य संस्कार प्रतिबन्धी। (योग सूत्र 1/50)

ऋतम्भरा प्रज्ञा से विवेकख्याति की प्राप्ति होती है। विवेक ख्याति का अर्थ है विवेक ज्ञान अर्थात द्रष्टा और दृश्य, आत्मा (पुरुष) और अनात्मा (चित्त) की अलग अलग अनुभूति। जब विवेक ज्ञान का उदय होता है तब योगी के चित्त में अत्यन्त स्वच्छता आ जाती है, अतः उसमें विलक्षण शक्ति आ जाती है। उस समय योगी सर्वज्ञ हो जाता है ऐसी सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी जो योगी उस सामर्थ्य का उपयोग नहीं करता उन विभूतियों एवं सिद्धियों में आसक्त नहीं होता, उससे सर्वथा विरक्त हो जाता है, तब ऐसी स्थिति में उसके विवेक ख्याति या पुरुष ख्याति या विवेक ज्ञान में किसी प्रकार विध्न नहीं पड़ता और वह विवेक ज्ञान निरन्तर प्रकाशमान रहता है। जब योगी की विवेक ख्याति परिपक्व और दृढ़ हो जाती है तो निरन्तर बने रहने वाले विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) से योगी को धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है–

प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः धर्ममेघः समाधिः''। (योग सूत्र 4/29)

और उस धर्ममेध समाधि के सिद्ध हो जाने से योगी के अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश रूपी पंचक्लेश तथा शुक्ल, कृष्ण और मिश्रित – ऐसे तीनों प्रकार के कर्म संस्कार (अर्थात् सभी प्रकार के क्लेश एवं कर्म संस्कार) समूल नष्ट हो जाते हैं –

''ततः क्लेश कर्मः निवृत्तिः''। (योग सूत्र 4/30)

और योगी जीवन मुक्त की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। और उसे परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। परम वैराग्य के द्वारा उस ऋतम्भरा प्रज्ञा जनित संस्कारो के भी निरूद्ध हो जाने पर नये पुराने सभी संस्कारो का पूर्णतः निरोध हो जाने के कारण निर्बीज अर्थात असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि की उच्चतम स्थिति विवेक ख्याति है। विवेक ख्याति की निरन्तरता व परिपक्व अवस्था ही धर्ममेघ समाधि है और धर्ममेघ समाधि की उच्च स्थिति असम्प्रज्ञात समाधि है। कैवल्य के दो रूप हैं– 1. जीवन् कैवल्य या जीवन्मुक्ति और 2. विदेह कैवल्य या विदेह मुक्ति।

धर्ममेघ समाधि जीवनमुक्ति की अवस्था है। पूर्ण कैवल्य की प्राप्ति असम्प्रज्ञात समाधि में होती है, जहाँ से फिर संसार में पुनरावृत्ति (पुनर्जन्म) नहीं होती–

''न च पुनरावर्तते।'' (छान्दोग्य उपनिषद 8/15/1)

13.5 कतिपय अन्य योग मार्गों में समाधि के भेद

13.5.1 राजयोग में समाधि के भेदः–

भिन्न भिन्न ध्यान एवं योगांग विषयनुसार राजयोग में 6 प्रकार की समाधियाँ बताई गई हैं–

1. ध्यान योग समाधि
2. नाद योग समाधि
3. रसानन्द योग समाधि
4. लययोग समाधि
5. भक्तियोग समाधि और
6. मनोमूर्च्छा समाधि

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि ध्यान योग समाधि को शाम्भवी मुद्रा से, नादयोग समाधि को भ्रामरी प्राणायाम से, रसानन्द समाधि को खेचरी मुद्रा से, लययोग समाधि को योनिमुद्रा से, भक्तियोग समाधि को इष्टदेव के प्रति समर्पण व भक्ति भाव से तथा मनोमूर्च्छा को मूर्च्छा कुम्भक के माध्यम से सिद्ध किया जाता है–

शाम्भव्या चैव भ्रामर्या खेचर्या योनिमुद्रया।

ध्यानं नादं रसानन्दं लससिद्धिश्चतुर्विध।।

पंचधा भक्तियोगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा।

षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकम् अवधारयेत्।।

इस अत्यन्त कठिन व दुर्लभ समाधि की स्थिति को प्राप्त कर लेने पर जीवात्मा सभी प्रकार के दुख एवं बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाती है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता–

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले। (घे॰ स॰ 7/23)

13.5.2 ज्ञानयोग में समाधि के भेदः– ज्ञानमार्ग के आचार्यो ने साधको हेतु 6 प्रकार के समाधि का अभ्यास आवश्यक बताया है–

1 अन्तर्दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि।

2 अन्तः शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि।

इन दोनों के अभ्यास से प्राप्त–

3 अन्तः निर्विकल्प समाधि।

4 बाह्यदृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि।

5 बाह्यशब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि।

इन दोनों के अभ्यास से प्राप्त–

6 बाह्य निर्विकल्प समाधि।

समाधि के उपर्युक्त 6 अंग हैं। वृत्ति दो दिशाओं में अभिमुख होती है– 1. अन्तरंग और 2. वहिरंग।

वृत्ति जब अन्तर्मुख होती है यानी भीतर की ओर प्रवृष्ट होती है तब उपर्युक्त त्रिविध अन्तरंग समाधियों का अभ्यास साधक को करना चाहिए और वृत्ति जब वहिर्मुख होकर बाह्य दृश्य में क्रीड़ा करने लगती है तो उपर्युक्त त्रिविध वहिरंग समाधियों का अभ्यास करना चाहिए। इससे

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।

अर्थात् 'जहाँ–जहाँ भी मन जाय वही समाधि कर ली' इस प्रकार अखण्ड समाधि प्राप्त होती है। (कल्याण विशेषांक योगांक, गीताप्रेस, गोरखपुर 579)

<u>1. अन्तर्दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधिः–</u> अपने अन्दर जो काम क्रोधादि वृत्तियाँ है वे ही दृश्य हैं। इन दृश्यों के भाव अभाव का साक्षी शुद्ध चेतन रूप मैं हूँ– इस प्रकार चिन्तन करना वृत्ति को साक्ष्याकार करना अर्थात साक्षी लीन करना ही अन्तः दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

<u>2. अन्तरशब्दानुविद्ध सविकल्प समाधिः–</u> शास्त्रों के श्रवण और मनन से स्वयं प्रकाश रूप आत्माकार वृत्ति करना ही अन्तश्शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कहलाता है।

3. अन्तर्निविकल्प समाधिः— उपर्युक्त दोनों समाधियों के अभ्यास से यह समाधि होती है इसमें दृश्य और शब्द दोनों सम्बन्ध छूट जाते है और अचल दीपशिखा सी साक्ष्याकारवृत्ति होती है।

4. बाह्य दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधिः— बाहर जगत के पदार्थों को देखकर होने वाली नाम रूपाकार वृत्ति को त्यागकर अर्थात माया रूप को त्यागकर ब्रहम रूप अंश का खोज करना ही बाहयदृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

5. वाह्यशब्दानुविद्ध सविकल्प समाधिः— सर्वम् खल्बिदम् ब्रह्म, सत्यम्—ज्ञानम्—अनन्तम्—ब्रह्म, आदि श्रुति वाक्यों से चराचर जगत का ब्रह्म रूप से चिन्तन करना— वृत्ति को ब्रह्माकार करना वाह्य शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

6. उपर्युक्त (4 एवं 5 क्रमांक की) समाधियों के अभ्यास से जब वृत्ति निस्तरंग होकर (निश्चल और शान्त होकर) ब्रह्माकार हो जाय तो वह स्थिति वाह्य निर्विकल्प समाधि कहलाती है।

श्री शंकराचार्य कहते हैं कि उत्थान में और अनुत्थान में भी उन अप्रमत्त एवं जितेन्द्रिय होकर यत्नशील साधक इस समाधिषट् का अभ्यास करे। मायाजनित आवरण और विक्षेप अज्ञान जब तक पूर्णतया नष्ट नहीं होते तब तक इस समाधि का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए— (अज्ञान)

उत्थाने वाप्यनुत्थानेऽप्यप्रमत्तो जितेन्द्रियः।

समाधिषटकं कुर्वीत सर्वदा प्रयतो यतिः।।

तावत् समाधि षटकेन नयेत्कालं निरन्तरम्। (सर्ववेदान्त सिद्धान्त संग्रह 900—901)

13.5.3 भक्ति सागर में समाधि के भेद—

स्वामी चरणदास जी महाराज भक्तिसागर में तीन प्रकार की समाधि बताते हैं—

1. भक्ति समाधि
2. योग समाधि और
3. ज्ञान समाधि।

ये तीनों ही समाधियाँ सद्गुरु के मिल जाने पर तो सुगम हो जाती हैं अन्यथा अत्यन्त ही दुष्कर हैं—

भक्ति योग अरूज्ञान की, त्रैविधि कहूँ समाधि।

गुरु मिलै तौ सुगम है, ना ही कठिन अगाधि।। (भक्ति सागर, अष्टांग योगः 174)

(1) भक्ति समाधिः—

इन्द्रियों को नियन्त्रित करके प्रभु के चरणों में ध्यान करते—करते जब ध्यान और ध्याता, ध्येयाकार हो जाए तथा तर्क—वितर्क (बुद्धि) और स्मृति आदि न रहें तो यह अवस्था समाधि की होती है—

सब इन्द्रिन को रोकि कै, करि हरिचरणन ध्यान।

बुद्धि रहै सुरतिहु रहै, तौ समाधि मत मान।।

ध्याता विसरै ध्यान में, ध्यान होय लय ध्येय।

बुद्धिलीन सुरति न रहे, पद समाधि लखि लेह।।

(2) **योगसमाधिः–** इसमें आसन प्राणायाम का अभ्यास करके चक्रों पर ध्यान करना होता है–

आसन प्राणायाम करि, पवन पंथ गहि लेहि।

षट् चक्कर को छेदकरि, ध्यान शून्य मन देहि।।

आया विसरै ध्यान में, रहे सुरति नहीं नाद।

लीन होय किरया रहित लागै योग समाध।।

(3) **ज्ञान समाधिः–**

ब्रह्म स्वरूप आत्मा से एकत्व स्थापित करना ही ज्ञान समाधि है। यह ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी रहित अवस्था होती है।

जब लग तत्त्व विचार करि, कहैं एक अरू दोय।

ब्रह्मव्रत बांधे रहैं, हयांलंग ध्यानहिं होय।।

मैं तू यह बल भूलिकर रहै जु सहज सुभाय।

आपा देखि उठाय करि, तान समाधि लगाय।।

ज्ञान रहित, ज्ञाता रहित, रहित ज्ञेय अरू जान।

लगी कभी छूटै नहीं, यह समाधि विज्ञान।।

इस प्रकार से स्वामी चरण दास जी ने (भक्तिसागर–अष्टांगयोग–174 से 181 तक) उपर्युक्त रूप में समाधि का वर्णन किया है। इन तीनों समाधियों में ध्येय विषय का अन्तर है। भक्ति योग में ध्यान का विषय प्रभुचरण हैं और यहां पदस्थ ध्यान की दृढ़ावस्था है। योग समाधि में ध्यान का विषय चक्र आदि हैं और यह स्थूल/सूक्ष्म पिण्डस्थ ध्यान की दृढ़ावस्था है जबकि ज्ञान समाधि निराकर ब्रह्म ध्यान की दृढ़ अवस्था है।

समाधि के भेद सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भिन्न–भिन्न साधना मार्गों का लक्ष्य एक ही है– निर्विकल्पक समाधि की अवस्था में पहुंचकर अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति या परमात्मा से ऐक्य है। समाधि मार्ग के पड़ाव भिन्न हो सकते हैं। ध्यान के विषयानुसार समाधि के नाम भी अलग–अलग हो सकते हैं फिर भी सभी में कहीं न कहीं भाव एक ही हैं–मन की शुद्धि, पवित्रता और वृत्ति रहित होना। **एक योग के विद्यार्थी के लिए ज्ञानवृद्धि हेतु अन्य मार्गों को जानना भी आवश्यक समझते हुए उपर्युक्त अनेक प्रकार के समाधियों के भेद बताये गये।** ये सभी भेद महर्षि पतंजलि के समाधि सम्बन्धी विवेचन में समाहित हो जाते हैं। अस्तु महर्षि पतंजलि की समाधि सम्बन्धी विवेचना अधिक महत्त्वपूर्ण और मनोवैज्ञानिक है।

13.6 समाधि और सप्तज्ञान भूमिकाः—

योगसाधक जैसे—जैसे अपनी साधना के शिखर की ओर पहुंचता है, वैसे—वैसे ही उसके भाव—विचार एवं ज्ञान क्षेत्र में परिवर्तन होने लगता है, उसके ज्ञान का विस्तार होता जाता है। निर्विकल्पक समाधि की अवस्था को प्राप्त हुए योगी को सप्त ज्ञान भूमिका प्राप्त हो जाती है। दार्शनिक दृष्टि से ज्ञानयोग की सप्तज्ञान भूमिका और राजयोग की सप्तज्ञान भूमिका दोनों की विवेचना भिन्न—भिन्न रूपों में की गई है जो निम्नवत् है—

13.6.1 ज्ञानयोग की सप्तज्ञान भूमिका—

योग वाशिष्ठ के अनुसार निर्विकल्पक समाधि की तरफ बढ़ रहे योगी के ज्ञान की सात अवस्थाएं (सप्तज्ञान भूमिकाएं) होती हैं—

(1) शुभेच्छा (2) विचारणा (3) तनुमानसा (4) सत्तापति (5) असंशक्ति (6) परार्थभाविनी और (7) तुर्यगा।

योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि—

ज्ञानभूमि शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृदा।

विचारणा द्वितीयास्यातृतीया तनुमानसा।।

सत्तापत्तिः चतुर्थी स्यात्ततोऽसंशक्ति नामिका।

परार्थभाविनी षष्ठी सप्तमी तुच्यर्यगास्मृता।।

अर्थात्

(1) शुभेच्छाः— संसार के सभी प्राणी दैहिक, दैविक और भौतिक इन त्रिविध दुःखों से ग्रस्त हैं। इसलिए जब जीवों को ज्ञान हो जाता है कि ये संसार दुःखमय है, अनित्य और क्षणभंगुर है, तब उसके अन्दर संसार के प्रति मोह कम होने लगता है और वैराग्य भाव का उदय हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसके शुभ विचार उत्पन्न होने लगते हैं। उसे सत्संगति और शास्त्रचर्चा एवं स्वाध्याय की इच्छा होती है। इसी अवस्था का नाम शुभेच्छा है।

2. विचारणाः— शास्त्र चर्चा, स्वाध्याय और सत्संग तथा अभ्यास और वैराग्य से जब जीव आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हो जाता है तब उस अवस्था का नाम विचारणा है।

3. तनुमानसाः— साधना के प्रभाव से मन (अन्तःकरण) का निर्मल तथा सूक्ष्म होकर उसके अन्दर सूक्ष्म तत्त्वो को ग्रहण करने की शक्ति आ जाना ही तनुमानसा अवस्था है।

4. सत्तापत्तिः— मन तथा बुद्धि का शुद्ध पवित्र होकर आत्म तत्त्व को ग्रहण करने योग्य हो जाना सत्रापित्त अवस्था है।

5. असंशक्तिः— चित्त मन, बुद्धि (अन्तःकरण) का सांसारिक अनात्म वस्तुओं से आसक्ति रहित होकर चैतन्य स्वरूप आत्म तत्त्व में दृढ़ स्थिति प्राप्त हो जाना असंशक्ति भूमिका (अवस्था) है।

6. परार्थ भावनी– उपर्युक्त अवस्था (असंशक्ति) के अभ्यास से जब आत्मा में दृढ़ और निश्चल स्थिति प्राप्त हो जाने पर बाहर और भीतर समस्त स्थूल–सूक्ष्म पदार्थों के अभाव की प्रतीति होने लगती है, तब उसी अवस्था को परार्थ भावनी कहा गया है।

7 तुर्यगाः– परार्थ भावनी अवस्था के दीर्घ अभ्यास से जब सांसारिक पदार्थों का भीतर और बाहर बिल्कुल प्रतीति (अनुभव) नहीं होता तब आत्म–स्वरूप ब्रह्म चैतन्य में स्थाई और निश्चल स्थिति दृढ़ हो जाती है यही अवस्था तुर्यगा कहलाती है।

तुर्यगा अवस्था जीवन्मुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। उसके अज्ञान स्वरूप बन्धन का नाश हो जाता है और शरीर छूट जाने पर मृत्यु के उपरान्त उसे पूर्ण मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य प्राप्त हो जाता है और तब वह ब्रह्म स्वरूप में स्थित हो जाता है। उसे 'प्राप्तस्व' की प्राप्ति हो जाती है। वह 'ब्रह्मविद ब्रहमैव भवति' हो जाता है जैसे घड़ा टूट जाने पर घड़े के अन्दर का आकाश बाहर के आकाश में मिल कर एक हो जाता है, उसी प्रकार तुर्यगा अवस्था को प्राप्त जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष (आत्मा) भी शरीर रूप आदि उपाधियों के मिट जाने पर ब्रह्म स्वरूप परमात्मा से मिलकर एक हो जाता है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। उसे अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है।

13.6.2 राजयोग की सप्त ज्ञान भूमिकाः– महर्षि पतंजलि के अनुसार जब निर्मल विवेक ख्याति के द्वारा योगी का चित्त शुद्ध हो जाता है, उसके मल नष्ट हो जाते हैं, उस समय उसके चित्त में दूसरे सांसारिक ज्ञानों का उदय नहीं होता। अतः सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली बुद्धि उत्पन्न होती है–

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिप्रज्ञा। (योग सूत्र 2/27)

राजयोग साधना में असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त हुए योगी को ज्ञान की जिन सात अवस्थाओं का बोध होता है वे निम्न हैं–

1. हेय शून्य अवस्था
2. हेयहेतुक्षीणतावस्था
3. प्राप्य प्राप्त अवस्था
4. चिकीर्षाशून्य अवस्था
5. चित्त की कृतार्थता अवस्था
6. गुणलीनता अवस्था और
7. आत्म स्थिति अवस्था

1 हेयशून्यावस्थाः– योगाभ्यास से योगी का चित्त जैसे–जैसे शुद्ध और निर्मल होने लगता है वैसे–वैसे उसके अनुभव एवं समझ भी सूक्ष्म होने लगते हैं। ज्ञान की इस प्रथम भूमिका (अवस्था) में साधक को संसार के समस्त विषयों के दुखपूर्ण होने का

ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह संसार परिणाम, ताप और संस्कार दुख से तथा गुणवृत्ति विरोध आदि दुखो से युक्त है, इसलिए यह त्यागने योग्य है, हेय है यह प्रथम ज्ञान भूमिका हेय शून्य अवस्था कहलाती है।

2. हेयहेतुक्षीणतावस्थाः– द्रष्टा और दृश्य का संयोग, हेय का हेतु है जिसके अभाव हो जाने से दुख के समस्त कारणों का नाश हो जाने पर योगी यह अनुभव करने लगता है कि मेरे समस्त क्लेश नष्ट हो चुके, जिसका अभाव करना था कर दिया, अब और कुछ अभाव करने योग्य शेष नहीं रहा। बुद्धि की यही अवस्था हेयहेतुक्षीणतावस्था कहलाती है।

3. प्राप्य प्राप्त अवस्थाः– इस तीसरी ज्ञान भूमिका में कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा शेष नहीं रहती। क्योंकि जो कुछ प्राप्त करना था, प्राप्त कर लिया अर्थात् समाधि द्वारा केवल अवस्था (कैवल्य) की प्राप्ति हो चुकी। अतः अब कुछ भी प्राप्त करना और कुछ भी जानना शेष नहीं रहा।

4. चिकीर्षाशून्य अवस्थाः– इस अवस्था में योगी अनुभव करने लगता है कि कुछ करना था कर लिया अर्थात् हान का उपाय जो निर्मल और अचल विवेक ख्याति है, उसे सिद्ध कर लिया, अब और कुछ करना शेष नहीं रहा। यही चिकीर्षाशून्य अवस्था कहलाती है।

5. चित्त की कृतार्थता अवस्थाः– इस अवस्था में चित्त का कोई कर्त्तव्य और प्रयोजन शेष नहीं रह जाता। चित्त ने अपना कर्त्तव्य 'भोग और अपवर्ग' देना पूरा कर दिया, अब उसका कोई प्रयोजन शेष नहीं रहा। यही चित्त की कृतार्थता अवस्था है।

6. गुणलीनताः– चित्त का कोई प्रयोजन न रहने से अब वह अपने कारण रूप गुणों में लीन हो रहा है, इस प्रकार के ज्ञान की अवस्था गुणलीनता कहलाती है।

7. आत्मस्थिति अवस्थाः– यह पुरुष का अपने आत्म स्वरूप में स्थिति हो जाने की अवस्था है जिसे कैवल्य या मोक्ष भी कहते हैं। इस सातवीं ज्ञान भूमिका में पुरुष (या आत्मा) गुणों के संयोग से रहित होकर अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

उपर्युक्त सप्तज्ञान भूमिका को योग दर्शन में सप्तधाप्रज्ञा भी कहते हैं। इसमें से प्रथम चार (क्रमशः 1 से 4 तक) अवस्थाएं कार्यविमुक्ति की द्योतक हैं, इस कारण वे 'कार्यविमुक्ति प्रज्ञा' (कार्य से विमुक्त करने वाला ज्ञान) कहलाती हैं और अन्त की तीन (क्रमशः 5 से 7 तक की) चित्त से विमुक्त करने वाली यानी चित्तविमुक्ति की द्योतक है इसलिए उन्हें 'चित्तविमुक्ति प्रज्ञा' कहते हैं।

13.6.3 समाधि प्राप्ति के विविध साधन–

मानव जीवन का परम पुरुषार्थ–अंतिम लक्ष्य सम्पूर्ण दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति पाकर अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थिति है जिसे मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य अपवर्ग आदि अनेकों नामों से सम्बोधित किया गया है। यौगिक दृष्टि कोण से इस अवस्था की प्राप्ति समाधि के द्वारा होती है, इसीलिए योग को समाधि भी कहा गया है।

समाधि की अवस्था तक पहुँचने के लिए चित्त (अन्तःकरण) की शुद्धता–निर्मलता–पवित्रता एवं एकाग्रता आवश्यक है। जिसके लिए विभिन्न योग साधना मार्ग बताये गये हैं जैसे–

ज्ञानयोग साधना, भक्तियोग साधना, कर्मयोग साधना, राजयोग साधना, हठयोग साधना, अष्टांग योग साधना, मन्त्रयोग साधना, तन्त्रयोग साधना, लययोग साधना, नादयोग साधना, कुण्डलिनी योग साधना आदि।

उपर्युक्त साधना पद्धतियों का अध्ययन विद्यार्थी गण योग साधना के विविध मार्ग के अन्तर्गत करेगे। जैसे भिन्न भिन्न नदियाँ एक समुद्र में जाकर मिल जाती हैं, सबके रास्ते अलग अलग हैं, किन्तु लक्ष्य एक है, उसी प्रकार विविध साधना प्रणालियाँ भी अपने–अपने ढ़ंग से साधक को उसके अंतिम लक्ष्य सामाधि की अवस्था से मोक्ष/कैवल्य की ओर ले जाती हैं। यह भारतीय धर्म एवं संस्कृति की महानता ही है कि यहाँ व्यक्ति की पात्रता एवं उसकी रूचि के अनुसार एक नहीं अनेको मार्ग हैं (साधना की अनेकता है), किस की उपासना करे– इसका कोई बन्धन नहीं है और वेदों को सत्य प्रमाण माना गया है यही तो वैदिक धर्म का लक्षण है–

प्रमाण्य बुद्धिः वेदेषु साधनानाम् अनेकता।

उपासनाम नियमश्चैतद्धर्मस्य लक्षणम्।।

13.7 पातंजल योग साधना

यद्यपि साधना की अनेक प्रणालियाँ हैं। जितने दर्शन मत मतान्तर एवं सम्प्रदाय हैं, उतनी ही साधना के विधि विधान भी हैं। अनेको साधना मार्ग व्यक्ति की पात्रता योग्यता एवं उसमें श्रद्धा विश्वास के अनुरूप उसके योग्य श्रेष्ठ हो सकते हैं किन्तु यदि सर्व सुलभ और सभी मार्गों का सार तत्त्व समाहित किये साधना मार्ग पर विचार किया जाय तो निःसन्देह वह मार्ग महर्षि पतंजलि प्रणीत साधना मार्ग ही कहा जा सकता है महर्षि पंतजलि का योग दर्शन वास्तव में दर्शन से ज्यादा योग ही है। इसका दार्शनिक पक्ष तो सांख्य पर आधारित है। पतंजलि का उद्देश्य ही है कैवल्य का व्यावहारिक उपाय–साधना मार्ग बताना। इसीलिए योग दर्शन को व्यावहारिक दर्शन कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में– भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की योग्यता पात्रता के अनुरूप अनेक साधना मार्ग (उपाय) बताये हैं, जिन्हे सामान्यतया निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है–

1 उच्चकोटि की साधना (अभ्यास एवं वैराग्य)

2 मध्यम कोटि की साधना (क्रिया योग)

3 निम्न कोटि की साधना (अष्टांग योग)

उपर्युक्त तीन तरह के साधन तीन प्रकार के अधिकारियों– पात्रता रखने वाले साधकों या योग्य जनों के लिए हैं। उत्तम अधिकारी के लिए उत्तम साधन, मध्यम

के लिए मध्यम और अधम के लिए अधम साधन महर्षि ने योग सूत्र में बताया है। जैसे–

उत्तम अधिकारी के लिए अभ्यास, वैराग्य और ईश्वर प्रणिधान आदि साधन बतलाये हैं।

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।" (योग सूत्र 1/12)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध होता है।

"ईश्वर प्रणिधानात् वा"। (योग सूत्र 1/23)

अथवा ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की भक्ति) से चित्त का निरोध हो जाता है।

यह उच्चकोटि की साधना कही जा सकती है जो उच्च कोटि के उत्तम साधकों के लिए है।

मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रिया योग बताया है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है–

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रिया योगः। (योग सूत्र 2/1)

निम्न कोटि के अधम अधिकारियों के लिए महर्षि पतंजलि ने 'अष्टांग योग' की शिक्षा दी है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि– ये आठ साधन अष्टांग योग कहलाते हैं–

यमनियमासनप्रणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। (योग सूत्र 2/29)

इनके अनुष्ठान से चित्त की अशुद्धता दूर होकर धीरे धीरे ज्ञान का विकास होता रहता है और अन्त में विवेक ख्याति की प्राप्ति हो जाती है।

योगाङ्ग अनुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः। (योग सूत्र 2/28)

सामान्यतया हर कोई साधक उत्तम या मध्यम कोटि का अधिकारी नहीं होता। प्राथमिक साधनों का पालन करके ही साधक मध्यम और उत्तम साधनाओं को पूर्ण कर सकता है। इसलिए योग के उत्तम और मध्यम साधनाओं के विषय में विशद विवेचना करने से पूर्व आवश्यक है कि पहले उन आठ प्राथमिक साधनाओं पर विचार किया जाय जिन्हे अष्टांग योग कहा जाता है और जिनके पालन से साधक उत्तम कोटि की साधना का अधिकारी बनता है।

13.8 अष्टांग योग साधनाः–

चित्त की शुद्धि एवं चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए महर्षि पतंजलि ने प्राथमिक साधकों को अष्टांग मार्ग का उपदेश दिया है जिन्हें 'अष्टांग योग' कहते हैं। इस योग मार्ग के आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पाँच योग के वहिरंग साधन कहलाते हैं एवं अंतिम तीन (धारणा, ध्यान, और समाधि) अन्तरंग साधन। इनमें से प्रथम अंग अगले अंग यानी पहली सीढ़ी दूसरी सीढ़ी पर पहुँचने की योग्यता प्रदान करती है और साधक

क्रमबद्ध रूप से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर साधना पथ पर अग्रसर होता जाता है। वहिरंग साधना के अभ्यास से साधक अंतरंग साधना करने योग्य हो पाता है। अष्टांग योग के प्रथम दो अंग (यम और नियम) नैतिक साधना पर बल देते हैं। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ, प्राणवान बनाना, स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का शोधन तथा चित्त को वाहय विषयों से हटाना है ताकि वह ध्यान और समाधि के योग्य हो सके। धारणा ध्यान और समाधि में एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म होते हुए अपनी पराकाष्ठा में पहुँचता है।

इन योगांगो के अभ्यास से चित्त की अशुद्धि का नाश हो जाता है, ज्ञान का प्रकाश चमकता है जिससे कि विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है फल स्वरूप आत्मा (पुरुष) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो कैवल्य को प्राप्त हो जाता है, जो कि योगी का लक्ष्य था।

महर्षि पतंजलि के ही शब्दो में–

''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।'' (योग सूत्र 2/29)

योगांङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। (योग सूत्र 2/28)

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः। (योग सूत्र 2/26)

.................हानं तत् दृशेः कैवल्यम्। (योग सूत्र 2/25)

अष्टांग योग साधना की समझ के लिए उसके सभी अंगो को जानना आवश्यक है, जो निम्न हैं–

1 यमः– यह अष्टांग योग का पहला अंग है। यम शब्द की व्युत्पत्ति यम उपरमें धातु से हुई है जिसका अर्थ उपरम् अर्थात् अभाव या निवृत्ति है। 'यमयन्ति निवर्तयन्तीति यमाः' यानि कि जो अवांछनीय कार्यों से निवृत्त कराते हैं, यम हैं। यम का अर्थ होता है– नियन्त्रण या संयम। मन, वचन और कर्म का संयम ही यम है। यम पाँच प्रकार के हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनके पालन से साधक बुरी आदतों से बचता है, उसके व्यवहार (आचरण) की शुद्धि होती है। यम मानव मात्र (सम्पूर्ण प्राणी मात्र) की उन्नति, विकास और विश्व शान्ति के लिए आवश्यक हैं (इसीलिए सभी धर्मों में ये स्वीकार किये गये हैं)। यम के पालन में किसी देश जाति या काल आदि का बन्धन नहीं है। महर्षि पतंजलि का कथन है कि यम सार्वभौम महाव्रत हैं–

(क) अहिंसासत्यास्तेय ब्रहमचर्यापरिग्रहा यमाः। (योग सूत्र 2/30)

(ख) जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाब्रतम्। (योग सूत्र 2/31)

(अ) अहिंसाः– मन, वचन और कर्म (शरीर) से किसी भी प्राणी की कभी भी किसी भी समय हिंसा न करना, उसे दुख न देना अहिंसा है। योग दर्शन में हिंसा को सभी बुराइयों का जड़ माना गया है। रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भी हिंसा को सबसे बड़ा पाप माना है–

परहित सरिस धरम नहीं भाई।

पर पीड़ा सम नहीं अघमाई।।

किसी के प्रति कठोर व्यवहार करना, कटु वचन बोलना, दूसरो की कमियाँ देखना (पर दोष दर्शन) निन्दा, चुगली करना आदि भी हिंसा के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए इनका सर्वथा त्याग साधना की पहली सीढ़ी है।

(अब यहाँ प्रश्न यह है कि क्या कोई डाक्टर रोगी का आप्रेशन करता है, माता पिता गुरुजन संतान एवं विद्यार्थी को डाटते हैं जिससे उसे कष्ट होता है तो क्या ऐसा कर्म हिंसा समझकर नही करना चाहिए? यहाँ यह कहा जा सकता है कि कार्य के पीछे भाव का विशेष महत्त्व है। यदि उपर्युक्त कार्य हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किये जा रहे हैं तो अवश्य ही हिंसा हैं, अन्यथा नहीं।)

(ब) सत्यः– सत्य का अर्थ है मिथ्या वचन व छल कपट युक्त व्यवहार का परित्याग। जैसा देखा सुना व अनुभव किया वैसा ही बोलना एवं मधुर हितकर वाणी बोलना सत्य है।

स. अस्तेयः– दूसरे के धन को न चुराना, चोर वृत्ति का परित्याग अस्तेय कहलाता है।

द. ब्रह्मचर्यः– ब्रह्मचर्य का अर्थ है विषय वासना की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति का त्याग करना। मन, वचन और शरीर से मैथुन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। भोजवृत्ति के अनुसार उपस्थ इन्द्रिय का संयम ही ब्रह्मचर्य है– ब्रह्मचर्यम् उपस्थ संयमः।

दक्ष संहिता के अनुसार मैथुन आठ प्रकार के होते हैं– स्त्रियों को वासना की दृष्टि से देखना, उनके विषय में कामुक चर्चा करना, उनके अंगो को स्पर्श करना, स्त्री के विषय में स्मरण चिन्तन करना, उनके साथ खेलना, एकान्त में उनके साथ रहना, गुप्त बातें करना और संभोग (क्रिया–निष्पत्ति) करना। इन सभी प्रकार के मैथुनों का परित्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य है।

'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।

संकल्पोऽध्यवसायश्च् क्रियानिष्पत्तिरेव च।।

एतन्मैथुनमष्टांग प्रभवन्ति मनीषिणः।

विपरीतं ब्रह्मचर्य मेतदेवाष्टलक्षणम्।। (दक्ष स्मृति)

य. अपरिग्रहः– आवश्यकता से अधिक धन सम्पत्ति आदि भोग सामग्री का संचय (परिग्रह) न करना ही अपरिग्रह है। योग साधना के लिए संचय प्रवृत्ति का त्याग आवश्यक है।

2. नियमः– अष्टांग योग का दूसरा अंग नियम है नियम का अभिप्राय आन्तरिक अनुशासन से है। यम जहाँ व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं बाहय क्रियाओं से सामन्जस्यपूर्ण बनाते हैं, वहीं नियम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित और सदाचार से पूर्ण करते हैं। त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् में कहा गया है कि–

अनुरक्तिः परे तत्त्व सततं नियमः स्मृतः।

अर्थात् परम तत्त्व में निरन्तर अनुरक्ति ही नियम है। नियम का उद्देश्य मन की शान्ति और पवित्रता प्राप्त कर एकाग्रता के लिए तैयारी करना है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार नियम भी पाँच हैं–

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (योग सूत्र 2/32)

अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम है।

अ. शौचः– शुचि (पवित्र) शब्द से शौच शब्द बना है। जिसका अर्थ होता है– शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता। अपने को मनसा, वाचा और कर्मणा शुद्ध पवित्र बनाये रखना शौच कहलाता है। इसके दो भेद हैं– 1 बाह्य शौच और 2 आन्तरिक शौच।

क. बाह्य शौच :– यह शारीरिक शुद्धि है। जल मिट्टी आदि से शरीर को शुद्ध रखना वाह्य शौच कहलाता है।

ख. आन्तरिक शौचः– यह मानसिक शुद्धि है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अंहकार आदि मनोविकारों को दूर करना आन्तरिक शौच कहलाता है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन की शुद्धि सत्य से होती है, जीवात्मा की शुद्धि तप और स्वाध्यास से होती है तथा बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। (मनु॰ 5.109)

महर्षि पतंजलि के अनुसार शौच के पालन से अपने अंगों में वैराग्य तथा दूसरो से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है–

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैः असंसर्गः।। (योग सूत्र 2/40)

ब. संतोषः– समुचित प्रयत्न के बाद जो मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है। हमेशा संतुष्ट रहना तृष्णा से रहित होना तथा अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही संतोष है।

सन्तोषस्तुष्टिः। (भोजवृत्ति 2.32)

तृष्णाराह्वत्य संतोषं इति (योग रहस्य)

संतोष का अर्थ भाग्य भरोसे बैठ जाना या निकम्मा बनकर पुरुषार्थ छोड़ देना नहीं है बल्कि पुरुषार्थ करते हुए आनन्दित रहना हर घड़ी प्रसन्न रहना, विपरीत परिस्थितियों में भी खिन्न न होना, यह संतोष है। संतोष ही सुख का मूल है, इसके विपरीत असन्तोष या तृष्णा ही दुख का मूल है–

संतोष मूलं ही सुखम्, दुख मूलं हि विपर्ययः। (मनुस्मृति 4/42)

संताष परम सुख है– संतोषं परम् सुखम्।

रामचरित मानस में भी कहा गया है–

गोधन गजधन बाजधन और रतन धन खान।

जब आवहि सन्तोष धन, सब धन धुरि समान।।

महर्षि पतंजलि ने सन्तोष का लाभ (फल) बताते हुए कहा है कि संतोष से सर्वोत्तम (निरतिशय) सुख प्राप्त होता है (जो व्यक्ति को समाधि की ओर ले जाता है)।

संतोषात् अनुत्तमसुखलाभः। (योग सूत्र 2/42)

(स) तपः– सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, लाभ–हानि, हर्ष–शोक आदि द्वन्द्वों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहना तप कहलाता है–

तपो द्वन्द्वसहनम्। (व्यास भाष्य 2/32)

तप के प्रभाव से अशुद्धि का नाश हो जाता है और तब शरीर एवं इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है–

कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धिक्षयात् तपसः। (योग सूत्र 2/ 43)

द. स्वाध्यायः– वेद, उपनिषद, गीता, दर्शन आदि सद्ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन, ऊँकार एवं गायत्री जप तथा ज्ञानी पुरुषों के कथनों का अनुशीलन स्वाध्याय कहलाता है। अपने स्वयं का आत्म–चिन्तन–सुधार एवं परिष्कार भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय से मन की शुद्धि हो जाती है जिससे इष्ट देवता का साक्षात्कार हो जाता है।

स्वाध्यायः प्रणवादि पवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। (व्यास भाष्य 2/1)

स्वाध्यायात् इष्टदेवता सम्प्रयोगः। (योग सूत्र 2/44)

य. ईश्वर प्रणिधानः– ईश्वर की उपासना या भक्ति को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। इसलिए योग भाष्यकार व्यास जी ने लिखा है कि–

अपने समस्त कर्मों को कर्मफल सहित परमगुरु परमेश्वर के निमित्त अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है–

ईश्वर प्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्। (व्यास भाष्य 2/32)

परमात्मा को अपने अन्तरात्मा में धारण करना हृदय में–अपने भावों में स्थापित करना, हर पल उसे अपने साथ अनुभव करना, ईश्वर प्रणिधान का लक्षण है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त होती है जिससे योग साधना के अन्तराय–विघ्न बाधाएं दूर हो जाती हैं और योगी शीघ्र ही समाधि सिद्धि को प्राप्त कर लेता है–

समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। (योग सूत्र 2/45)

3. आसनः– आसन अष्टांग योग का तीसरा अंग है। पतंजलि का कथन है कि स्थिर भाव से सुख पूर्वक बैठने को आसन कहते हैं–

"स्थिर सुखमासनम्"। (योग सूत्र 2/46)

चित्त की एकाग्रता के लिए शरीर का अनुशासन भी उतना ही आवश्यक है जितना मन का। इसलिए मन की एकाग्रता ध्यान हेतु शरीर का संयम भी जरूरी है। यह काम आसन करता है। आसन शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने में भी सहायक है। आसन के अनेकों प्रकार हैं– जैसे सुखासन, पद्मासन, वज्रासन आदि। आसन को सिद्ध कर लेने से साधक के शरीर पर सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता–

ततो द्वन्द्वानभिघातः। (योग सूत्र 2/48)

आसन सिद्ध हो जाने पर सभी प्रकार के शारीरिक द्वन्द्वों को बिना किसी प्रकार की पीड़ा के सहन करने की शक्ति आ जाती है जिससे उन द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता। जिसने ये द्वन्द्व चित्त को चंचल बनाकर साधना में विघ्न नहीं डाल पाते। इस प्रकार आसन समाधि प्राप्ति के सहयोगी अंग हैं।

4. प्राणायामः– यह अष्टांग योग का चौथा अंग है। प्राणायाम शब्द प्राण+आयाम से बना है। प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति और आयाम का अर्थ है विस्तार करना, धारणा करना, नियन्त्रित करना या रोकना। इस प्रकार प्राणवायु पर संयम करना तथा अपने अन्दर की प्राण शक्ति–जीवनी शक्ति का विस्तार करना ही प्राणायाम है–

प्राणानाम आयामः प्राणायामः। महर्षि पतंजलि ने श्वास प्रश्वास की गति को रोकने को प्राणायाम कहा है।

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोः गति विच्छेदः प्राणायामः। (योग सूत्र 2/49)

प्राणायाम क्रिया के तीन अंग हैं– पूरक, कुम्भक, और रेचक। इसके अन्तर्गत क्रमशः नियमपूर्वक अपने भीतर श्वास खीचना, रोकना और छोड़ना आदि क्रियाएं आती हैं।

प्राणायाम से जहाँ अनेक प्रकार के रोगो से मुक्ति मिलती है, वहीं मन की शुद्धि भी होती है मन पर नियन्त्रण होने लगता है। उस पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता और मन के अन्दर धारणा की विशेष योग्यता आ जाती है–

ततः क्षीणते प्रकाशावरणम्।

धारणासु च योग्यता मनसः।। (योग सूत्र 2/52,53)

5. प्रत्याहारः– यह अष्टांग योग का पाँचवा अंग है। प्रत्याहार शब्द प्रति+आहार से बना है। प्रति का अर्थ है पीछे और आहार का अर्थ है लेना या ग्रहण करना। इस प्रकार प्रत्याहार का अर्थ है विमुख होना पीछे हटना, दूसरी दिशा में जाना। यौगिक दृष्टिकोण से इन्द्रियों का अपने वाह्य विषयों से हटकर अन्दर की ओर जाना यानी वहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होना प्रत्याहार है। योग दर्शन में इन्द्रियों का अपने विषयों को त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः।

(योग सूत्र 2/54)

पुनः चित्तश्य अन्तर्मुखी भावः प्रत्याहारः। (त्रिशिख ब्राहमणेपनिषद)

प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है–

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। (योग सूत्र 2/55)

6. धारणाः– किसी देश या स्थान विशेष पर चित्त को स्थिर करना (बाँधना) धारण कहलाती है–

देश बन्धश्चित्तश्य धारणा। (योग सूत्र 3/1)

धारणा में चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करना होता है। यह वस्तु या स्थान वाहय या आन्तरिक दोनो हो सकता है। व्यास भाष्य में कहा गया है कि नाभि चक्र, हदय कमल, मूर्ध्य ज्योति, नासिकाग्र, जिह्वा आदि देशों या स्थानों में अथवा किसी अन्य बाहय विषयों में वृत्ति मात्र से चित्त को एकाग्र करने का नाम धारणा है। वेदान्त सार में अद्वितीय चेतन सत्ता (ब्रह्म) में मन को लगाना ही धारणा कहलाता है–

अद्वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रिय धारणां धारणाः।। (वेदान्त सार, 205)

अष्टांग योग की दृष्टि से धारणा योग की छठी सीढ़ी है जबकि अन्तरंग योग की दृष्टि से धारणा पहली सीढ़ी कहलायेगी क्योकि यम से प्रर्त्याहार तक वहिरंग योग कहलाता है और धारणा, ध्यान व समाधि अंतरंग योग। महर्षि पतंजलि ने धारणा ध्यान और समाधि को संयुक्त रूप में संयम भी कहा है–

त्रयम् एकत्र संयमः। (योग सूत्र 3/4)

7. ध्यानः– यह धारणा की अगली अवस्था है धारणा परिपक्व बन जाने पर ध्यान के रूप में परिणत हो जाती है। धारणा में मन किसी एक स्थान पर एकाग्र होता है और जब यही एकाग्रता इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसमें ज्ञानात्मक चित्त वृत्ति का एक अविच्छिन्न प्रवाह बहने लगता है, तब उसे ध्यान कहते है–

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। (योग सूत्र 3/2)

मैत्री उपनिषद के अनुसार मन का विषयों से रहित हो जाना ही ध्यान है–

ध्यानं निर्विषयं मनः।

मनुस्मृति में कहा गया है कि प्राणायाम से शरीर के दोष, रोग आदि दूर होते हैं। प्रत्याहार से बाह्य विषयों की ओर प्रवृत्ति समाप्त होती है। अर्थात् विषयों के प्रति अनासक्ति का भाव आता है। धारणा से मनुष्य के पाप, कुसंस्कार और कुविचार आदि नष्ट होते है। तथा ध्यान के अभ्यास से मनुष्य के अन्दर विद्यमान विकृत करने वाले विकार, जैसे– काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि नष्ट होते हैं–

प्राणायामैर्दहेद् दोषान्, धारणाभिश्च किल्विषम्।

प्रत्याहारेण संसर्गान, ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।। (मनु॰ 6.72)

8. समाधिः– समाधि योग की अंतिम सीढ़ी है। यह ध्यान की उच्च अवस्था है। ध्यान करते–करते जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाता है, तब वह ध्यान ही समाधि हो जाता है–

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः। (योग सूत्र 3/3)

धारणा ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि धारणा में मन की पूर्ण एकाग्रता नहीं होती। ध्यान में पूर्ण एकाग्रता हो जाती किन्तु ध्याता, ध्येय और ध्यान की प्रतीति अलग–अलग बनी रहती है जबकि समाधि में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है। ध्याता और ध्यान ध्येय में लीन हो जाते हैं। समाधि की अवस्था में चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं और समाधि की निर्बीज अवस्था में द्रष्टा पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

समाधि का विस्तृत अध्ययन आप (विद्यार्थी गण) इसी इकाई के अन्तर्गत कर चुके हैं। यहाँ समाधि प्राप्त के साधनों की चर्चा के प्रसंग में आपकों बताया गया कि अष्टांग योग क्या है और किस प्रकार यह समाधि का साधन है।

समाधि प्राप्ति हेतु मूलभूत पात्रता के विकास में अष्टांग योग विशेष रूप से सहायक है। इसीलिए समधि के यौगिक उपायो में यह साधना का मूल आधार होने के कारण विशेष रूप से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है।

13.8.1 क्रिया योग साधनाः–

महर्षि पतंजलि ने समाधि की अवस्था तक पहुँचने का दूसरा मार्ग 'क्रिया–योग' को बताया है उनके अनुसार तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है–

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।। (योग सूत्र 2/1)

यद्यपि तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान– ये तीनो ही अष्टांग योग के अन्तर्गत नियम के अंग हैं। जिनका चित्त दूषित है, जो निम्न स्तर के साधक हैं, उन्हे अहिंसा सत्य आदि यमों का अभ्यास भी करना है और इन तप स्वाध्याय आदि नियमों का भी। किन्तु जो मध्यम श्रेणी के साधक हैं जो हिंसा, स्तेय, परिग्रह आदि से मुक्त हैं, जिनका व्यवहार आचरण शुद्ध है, ऐसा साधकों के लिए महर्षि ने तीन ही उपाय बताये हैं– तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान। और इन तीनों के समन्वित स्वरूप को क्रिया योग का नाम दिया है।

तपः– योग की सिद्धि के लिए तप की नितान्त आवश्यकता है। जब व्यावहारिक जीवन में बिना कष्ट सहे, तप पुरुषार्थ के बिना लौकिक उपलब्धि हासिल नहीं होती तो आध्यात्मिक उपलब्धि कैसे मिल सकती है। इसीलिए व्यास भाष्य में कहा गया है कि–

"ना तपस्विनो योगः सिद्धयति"।

अर्थात् जो तपस्वी नहीं है उनका योग सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि अनादि काल से जन्म जन्मान्तरों से चित्त क्लेश वासनाओं से आच्छादित है। हमारे अन्तःकरण में

क्लेश, कर्म–विपाक और वासनाओं की अनन्त गांठे लगी हुई हैं। समस्त चित्त मल–विक्षेप से भरा हुआ है...........जिनका नाश (ग्रन्थियों का भेदन) तप के द्वारा ही किया जा सकता।

तप के साथ साथ स्वाध्याय भी आवश्यक है। प्रणव आदि का जप एवं मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय है। तप और स्वाध्याय से व्यक्ति को प्रायः अहंकार होने लगता है। इसीलिए अहंकार उत्पन्न न हो, अहंकार के नाश के लिए अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित करते जाना भी योग साधक के लिए जरूरी है, जिसे ईश्वर प्राणिधान कहा गया है। ईश्वर की शरणागति, ईश्वर की भक्ति ही ईश्वर प्रणिधान है। व्यास भाष्य के अनुसार–

स्वाध्यायः प्रणवादि पवित्राणाम् जपः मोक्षशास्त्रध्ययनम् ईश्वर प्रणिधानम् सर्व क्रियाणाम् परमगुरावर्पणं तत्फलं सन्यासो वा। (योग सूत्र 2/1)

क्रिया योग के प्रभाव से समाधि के प्रति भावना उत्पन्न होती है और अविद्या आदि क्लेश क्षीण हो जाते हैं–

''समाधि भावनार्थः क्लेशतनू करणार्थश्च''। (योग सूत्र 2/1)

जिससे क्लेश रहित योगी विवेकख्याति से ईश्वर साक्षात्कार की ओर उन्मुख होता हुआ समाधि को प्राप्त कर लेता है।

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान का वर्णन अष्टांग योग के अन्तर्गत भी विद्यार्थी गण कर चुके हैं। इसीलिए अब और अधिक यहाँ उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

13.8.2 अभ्यास एवं वैराग्य साधना

समाधि की अवस्था तक पहुँचने का उच्च स्तरीय साधन अभ्यास और वैराग्य है जो उच्च कोटि के समाहित चित्त वाले साधकों के लिए है। पूर्व जन्मों के साधना एवं संस्कार से जिन साधकों का चित्त शुद्ध हो चुका है, जो हिंसा, असत्य, चौर्य वृत्ति, संचय आदि के कुसंस्कारों से मुक्त हैं, जिनके अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ अहंकार आदि मनोविकार क्षीण हो चुके हैं– ऐसे साधक तो स्वभाव से ही यम नियम पालन करने वाले होते ही हैं। इसीलिए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि समाहित चित्त वाले उच्च स्तरीय साधकों के चित्त की वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य की साधना से ही हो जाता है–

अभ्यास–वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (योग सूत्र 1/12)

श्रीमद्भगद्गीता में भी श्री कृष्ण ने कुन्ती पुत्र कौन्तेय अर्थात् अर्जुन को मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य की शिक्षा दी है–

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। (गीता 6/35)

अभ्यासः– अभ्यास का अर्थ है प्रयास या प्रयत्न करते रहना। चित्त की शुद्धता और स्थिरता योग साधना की अनिवार्य आवश्यकता है अतः इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करना ही अभ्यास है–

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। (योग सूत्र1/13)

अभ्यास के विविध उपायः– महर्षि पतंजलि ने अभ्यास के अनेकों साधन बतलाये है जैसे–

1. चित्त की निर्मलता और प्रसन्नता सम्बन्धी अभ्यासः–

सुखी मनुष्यों के प्रति मित्रता का भाव रखने से, दुखी मनुष्यों के प्रति दया की भावना से, पुण्यात्मा व्यक्तियों के प्रति प्रसन्नता की भावना रखने से और पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना करने से चित्त के रोग, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि मल नाश होते है और चित्त शुद्ध निर्मल होता है। अतः ये भावनात्मक चित्त शुद्धि के उपाय हैं। साधक को इन उपायों का अभ्यास करना चाहिए–

मैत्री करूणामुदिता उपेक्षाणाम् सुख दुख पुण्य अपुण्य विषयाणां भावनातः चित्त प्रसादनम्।

(योग सूत्र 1/33)

2. प्राणायामः– के अभ्यास से भी चित्त शुद्ध निर्मल और स्थिर हो जाता है।

प्रच्छर्दन विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य। (योग सूत्र 1/34)

अर्थात्– बारम्बार प्राण वायु को शरीर से बाहर निकालने और रोकने के अभ्यास से भी चित्त निर्मल होता है और उसमें स्थिरता आती है।

3. विषयवती प्रवृत्तिः– भी चित्त (मन) की स्थिति को बाँधने वाली होती है–

विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी। (योगसूत्र 1/35)

4. शोकरहित सात्विक प्रवृत्ति भी मन को स्थिर करने वाली होती है।

''विशोका वा ज्योतिष्मती।'' (योग सूत्र 1/36)

5. रागद्वेष रहित महापुरुषों का आलम्बन अभ्यास भी चित्त को स्थिर करने वाला होता है–

वीतरागविषयं वा चित्तम्।। (योग सूत्र 1/37)

6. अपनी–अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार जिसको जो श्रेष्ठ लगे उसका ध्यान करने से भी चित्र एकाग्र हो जाता है–

''यथाभिमतध्यानात् वा'' (योग सूत्र 1/39)

इसके अतिरिक्त ईश्वर की भक्ति, शरणागति, उसका जप ध्यान का अभ्यास करने से भी अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से भी चित्त की शुद्धता स्थिरता एवं समाधि की प्राप्ति हो जाती है–

ईश्वर प्राणिधानात् वा। (योग सूत्र 1/23)

<u>अभ्यास की निरन्तरताः–</u> योग साधना में साधक को पूरी निष्ठा के साथ अभ्यास करते रहना चाहिए। बिना व्यवधान के दीर्घ काल तक और लगातार (निरन्तर) पूरे

श्रद्धा और विश्वास के साथ आदर पूर्वक अभ्यास करते रहने पर वह अभ्यास दृढ अवस्था वाला होता है–

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः"। (योग सूत्र 1/14)

जितनी अधिक लगन और निष्ठा के साथ साधना की जायेगी सफलता भी उतनी ही शीघ्र मिलेगी–

तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः। (योग सूत्र 1/21)

वैराग्यः– लौकिक एवं परिलौकिक सभी प्रकार के भोगों के प्रति आसक्ति रहित हो जाना ही वैराग्य कहलाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार–

" दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् (योग सूत्र 1/15)

अर्थात् दृष्ट और श्रुत यानी देखे और सुने (लौकिक और परिलौकिक) दोनों प्रकार के भोगों से जब चित्त भली भांति तृष्णा रहित हो जाता है, तो ऐसे कामना रहित चित्त की जो वशीकार नामक अवस्था विशेष है, वह वैराग्य (अपर वैराग्य) है।

वैराग्य के भेदः– योग दर्शन में वैराग्य के दो प्रकार बताये गये हैं– **i.** अपर वैराग्य और **ii.**. पर वैराग्य

(i) अपर वैराग्यः– भोग विषयों के प्रति तृष्णा रहित हो जाना अपर वैराग्य कहा जाता है। इससे बुद्धि में विषयों के प्रति अनासक्ति भाव का जागरण होता है। विषय दो प्रकार के होते हैं और 1. दृष्ट 2. श्रुत या आनुश्रविक।

दृष्ट विषय वे हैं जिनका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है जैसे धन, स्त्री, पुत्र, भोग सामग्री ऐश्वर्य इत्यादि। आनुश्रविक विषय वे हैं जिनका प्रत्यक्ष अनुभव तो नही होता किन्तु इनको धर्म शास्त्रों आदि में सुना जाता है जैसे स्वर्ग, वैकुण्ठ, परलोक इत्यादि। इन दोनो प्रकार के विषयो से सर्वथा तृष्णा रहित विरक्त हो जाना, इन्हे पाने की लेश मात्र भी इच्छा मन में न रह जाना (आसक्ति रहित हो जाना) यह वशीकार नामक अपर वैराग्य है। इस वैराग्य से सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

(ii) परवैराग्यः– अपर वैराग्य की दृढ़ अवस्था परवैराग्य है। अपरवैराग्य के परिपक्व होने पर साधक को विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। चित्त की अत्यन्त निर्मलता में यह विवेक ख्याति भी चित्त की ही एक सात्विक वृत्ति और सतोगुण का परिणाम प्रतीत होने लगती है। फिर साधक के इससे भी वैराग्य हो जाता है। साधक में प्रवृत्ति के गुणों एवं उनके कार्यो मे किसी प्रकार की किंचित मात्र भी तृष्णा नहीं रहती वह सर्वथा आप्तकाम–निष्काम हो जाता है। ऐसी सर्वथा राग रहित वैराग्य अवस्था को ही परवैराग्य कहते हैं–

"तत् परम् पुरुषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।" (योग सूत्र 1/16)

पर वैराग्य से ही असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है।

पर वैराग्य ही ज्ञान की पराकाष्ठा है–

"ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम"। (व्यास भाष्य 1/16)

इसी से ही कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति होती हे–

एतस्यैव नान्तरीयकं कैवल्यम्। (व्यास भाष्य 1/16)

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य की साधना के द्वारा उत्तम कोटि के साधक कैवल्य की प्राप्ति कर सकते हैं। वैराग्य ज्ञान रूप है तो अभ्यास प्रयत्न रूप। वैराग्य से चित्त की बाह्य वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं और अभ्यास से आन्तरिक वृत्तियाँ। इस प्रकार इन दोनों की साधना से सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का निरोध होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति 'कैवल्य' हो जाता है।

13.9 समाधि का फल

निर्बीज समाधि का फल कैवल्य की प्राप्ति है किन्तु इस अवस्था तक पहुँचने से पूर्व समाधि के द्वार पर प्रवेश करते ही साधक को अनेकों अलौकिक शक्तियों का साक्षात्कार एवं अनुभव होने लगता है। योग साधक को इन शक्तियों की उपेक्षा कर आगे बढ़ना होता है क्योंकि ये अलौकिक शक्तियाँ योग साधक को पथ से विचलित करने वाली विध्न स्वरूप है। समाधि के इन फलों का अध्ययन विद्यार्थीगण अगले इकाईयों में कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्नः–

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

(क) समाधि योग साधना का..........................सोपान है।

(ख) समाधि की अवस्था में ध्याता और ध्यान..........................हो जाते है।

(ग) सवितर्क समाधि में ध्यान का विषय...............................होता है।

(घ) सम्प्रज्ञात समाधि की उच्च अवस्था में...........................का उदय होता है।

(ङ) योग दर्शन में सप्तज्ञान भूमिका को................................भी कहते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइयेः–

(क) अभ्यास और वैराग्य की साधना चंचल चित्त वालों के लिए है।

(ख) नियम भावात्मक सद्‌गुण हैं।

(ग) धारणा मन की एकाग्र अवस्था है।

(घ) आत्मस्थिति अवस्था चित्त विमुक्ति प्रज्ञा है।

(ङ) विवेक ख्याति से धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है।

3. संक्षिप्त अन्तर बताइयेः–

(क) सबीज समाधि एवं निर्बीज समाधि

(ख) जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति

(ग) भक्ति समाधि एवं योग समाधि

(घ) यम एवं नियम

(ङ) विवेक ख्याति से बुद्धि एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा

4. अति लघुत्तरीय प्रष्नः— संक्षेप में उत्तर दें—

(क) समाधि को योग क्यों कहते है?

(ख) असम्प्रज्ञात समाधि के बाद पुनर्जन्म क्यों नहीं होता?

(ग) तनुमानसा का क्या अर्थ है?

(घ) प्राप्तस्व प्राप्ति किसे कहते हैं?

(ङ) प्रत्याहार किसका संयम है?

5. सही विकल्प की पहचान कीजिएः—

''तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः''

सूत्र का सही सन्दर्भ है—

(क) ब्रह्म सूत्र— समाधिपाद 30

(ख) योग सूत्र— समाधिपाद 30

(ग) योग सूत्र— विभूतिपाद 03

(घ) इनमें से कोई नही।

13.10 सारांश

इस इकाई में अब तक आपने जाना कि ध्यान की सर्वोच्च अवस्था ही समाधि है। जिसमें ध्यान क्रिया और ध्येय अलग अलग न रहकर एक हो जाते हैं। अर्थात् ध्याता और ध्यान 'ध्येयाकार' हो जाते हैं। समाधि ही योग साधना की अंतिम सीढ़ी होती है। समाधि में ध्यान का विषय क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म, अति सूक्ष्म होता जाता है जब तक ध्यान का कोई न कोई विषय है अर्थात् ध्यान का आधार वृत्ति है तब तक समाधि सम्प्रज्ञात या सबीज कहलाती है और समाधि की उच्च अवस्था में जब ध्यान का कोई आधार या आलम्बन ही न रह जाय तो वह समाधि असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि कहलाती है। ध्यान के विषयानुसार सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं— वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मिता अनुगत। ये सभी सबीज समाधि है। क्योंकि इनमें कोई न कोई ध्यानवृत्ति अभी मौजूद है। जबकि असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं, संस्कारो का भी निरोध हो

जाता है, इसीलिए इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं। सम्प्रज्ञात या सबीज समाधि में विवेक ख्याति ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय से योगी के अविद्या आदि क्लेश नाश हो जाते हैं– यह जीवन् कैवल्य (जीवन् मुक्ति) की अवस्था है। असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि में पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यह पूर्ण कैवल्य (विदेह कैवल्य/विदेह मुक्ति) की अवस्था होती है। समाधि लाभ कराने वाले अनेकों योग मार्ग हैं–जैसे ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, राजयोग, हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, आदि। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में भी चित्त वृत्ति निरोध के अनेकों उपाय बताये गये है। पतंजलि ने साधक की योग्यता पात्रता के अनुरूप उत्तम साधक–समाहित चित्त वाले के लिए अभ्यास वैराग्य तथा मध्यम एवं अधम साधक के लिए क्रमशः क्रियायोग एवं अष्टांग योग साधना की व्यावहारिक शिक्षा दी है।

13.11 शब्दावली

उत्कृष्ट	–	उन्नत, श्रेष्ठ
निर्वात	–	वायु रहित स्थान
निश्चल	–	स्थिर, शान्त
परिपक्व	–	पूर्ण
दीर्घ	–	लम्बा
परिणत	–	परिवर्तित
ध्यान	–	मन की एकाग्रता
ध्याता	–	ध्यान करने वाला व्यक्ति
ध्येय	–	ध्यान का विषय, लक्ष्य
एकाकार	–	एक हो जाना
आत्म–विस्मृति	–	स्वयं को भूल जाना, अपने शरीर मन आदि का अनुभव न होना
शासित	–	प्रकाशित
अंसदिग्ध	–	सन्देह से रहित, निःसन्देह
बाध	–	अभाव
निवृत्ति	–	छुटकारा, रहित होना
ज्ञाता	–	ज्ञान प्राप्त करने वाला
ज्ञेय	–	ज्ञान का विषय
सर्वथा	–	पूरी तरह, हर प्रकार से सही–सही
सम्यक्	–	पूरी तरह से, भली भाति, पूर्ण
आलम्बन	–	आधार
निकृष्ट	–	निम्न स्तर की
अनात्मा	–	जड़ तत्व, चित्त
निस्तरङ्ग	–	तरंग रहित, विचार रहित, निश्चल और शान्त
ऐक्य	–	एकाकार हो जाना
हेय	–	दुख
हेतु	–	कारण
हान	–	मुक्ति या छुटकारा

हानोपाय	–	मुक्ति का उपाय
ग्रहाय	–	इन्द्रियों के विषय (पंचमहाभूत तन्मात्राएं आदि)
ग्रहण	–	अन्तःकरण और इन्द्रियाँ, साधन
ग्रहीता	–	पुरुष, चेतन तत्व, बुद्धि युक्त पुरुष
समापत्ति	–	एकाग्रता, समाधि
विशद	–	विस्तृत

13.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 (क) अंतिम **(ख)** ध्येयाकार **(ग)** स्थूल **(घ)** ऋतम्भरा प्रज्ञा **(ङ)** सप्तधा प्रज्ञा।

2 (क) असत्य **(ख)** सत्य **(ग)** असत्य **(घ)** सत्य **(ङ)** सत्य।

3. (क) सबीज समाधि में ध्यान की कोई न कोई आलम्बन वृत्ति रहती है जबकि निर्बीज समाधि में सम्पूर्ण वित्तियों का निरोध हो जाता है।

(ख) विवके ख्याति से अविद्या आदि क्लेशों एवं संस्कारो का नाश होने पर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है। शरीर छूट जाने के बाद विदेह मुक्ति को प्राप्ति होती है।

(ग) भक्ति सागर के अनुसार ईश्वर की भक्ति जप ध्यान से होने वाली समाधि भक्ति समाधि है जबकि योग समाधि में आसन प्राणायाम का अभ्यास करके चक्रों पर ध्यान करना होता है।

(घ) यम में दुर्गुणों को छोड़ना है, नियम में सद्गुणों को अपनाना है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह यम है जबकि शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते है।

(ङ) अविद्या, अज्ञान से युक्त अशुद्ध प्रज्ञा को बुद्धि कहते है जबकि योग साधना से होने वाली निर्मल शुद्ध बुद्धि ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है जिससे विवक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

4. (क) क्योंकि समाधि की अवस्था में ही योग का उद्देश्य पूर्ण होता है।

(ख) असम्प्रज्ञात समाधि कैवल्य की अवस्था है जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता। (जन्म के सभी हेतु कारक, अविद्या संस्कार आदि का नाश हो चुका होता है।)

(ग) योग वशिष्ठ के अनुसार योग साधना के प्रभाव से अन्तःकरण (मन) का निर्मल एवं सूक्ष्म होकर उसके अन्दर सूक्ष्म तत्त्वों को ग्रहण करने की शक्ति आ जाना ही ज्ञान की तनु–मानसा अवस्था है।

(घ) पुरुष स्वभावतः नित्य, स्वतन्त्र एवं दुख आदि से मुक्त है। कैवल्य की अवस्था में वह अपने इसी वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है जो कि वास्तव में वह है ही। इसीलिए कैवल्य की अवस्था को प्राप्तस्व प्राप्ति (यानी जो पहले से प्राप्त था उसी को पुनः प्राप्त करना) कहा गया है।

(ड) प्रत्याहार इन्द्रियों का संयम (नियन्त्रण) है।

5 (ग) योग सूत्र–विभूतिपाद 03

13.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 गोयन्दका, हरिकृष्णदास– पातंजल योग दर्शन प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर।

2 आरण्य, श्री मत स्वामी हरिहारानन्द– पातंजल योग दर्शन, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली।

3 सरस्वती स्वामी विज्ञानान्द– योग विज्ञान प्र॰ योग निकेतन ट्रस्ट ऋषिकेश।

4 पोद्दार श्री हनुमान प्रसाद सम्पादक कल्याण योगांक– प्र॰ गीता प्रेस गोरखपुर

5 कल्याण साधना अंक– प्र॰ गीता प्रेस गोरखपुर

6 भारती परमंहस स्वामी अनन्त– पातंजल योग शास्त्र एक अध्ययन– प्र॰ मोरार जी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान नई दिल्ली।

7 स्वामी शिवानन्द, साधना प्रकाशक– दिव्य जीवन संघ, टिहरी गढ़वाल।

8 द्विवेदी डॉ. कपिलदेव– साधना एवं सिद्धि विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

9 सिन्हा, डॉ. हरेन्द्र प्रसाद– भारतीय दर्शन की रूपरेखा– मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 समाधि क्या है? विविध योग ग्रन्थों में इसे किस रूप में परिभाषित किया गया है?

2 महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में समाधि सम्प्रत्यय की विस्तृत विवेचना कीजिए।

3 सम्प्रज्ञात समाधि का स्वरूप स्पष्ट करें?

4 सबीज एवं निर्बीज समाधि में क्या अन्तर है? समझाइये।

5 राजयोग अथवा ज्ञान योग में से किसी एक के अनुसार समाधि के भेदों की विवेचना कीजिए।

6 भक्ति सागर में समाधि का स्वरूप क्या है? व्याख्या करें।

7 सप्तधा प्रज्ञा से आप क्या समझते हैं। स्पष्ट कीजिए।

8 महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में चित्त वृत्ति निरोध के प्रमुख साधन कौन कौन से हैं? अभ्यास एवं वैराग्य की विवेचना कीजिए।

9 अष्टांग योग क्या है? यम नियम का व्यावहारिक महत्त्व समझाइये।

10 महर्षि पतंजलि के अनुसार क्रिया योग का वर्णन कीजिए।